।। ॐ ।।

।। श्री गणराज समर्थ ।।

पंचेशवरद सर्वपूजनीय भगवान

श्रीगणेश
(हिंदी)

- संपादक तथा प्रकाशक -
श्रीगा. बालविनायक स. लालसरे
श्रीयोगींद्रमठ - गाणेश जगद्‌गुरुपीठ
मोरगाँव, (जि. पुणे)
हिंदी अनुवाद - प्रा. सौ. शैलजा मांडके
आषाढ शुक्ला गुरुपौर्णिमा

सेवामूल्य रुपये २१/-

(सर्वाधिकार गुरुपीठ के अधीन)

प्राक्कथन

।। श्री गणराज समर्थ ।।

असे मुद्‌गलासारिखा भक्तराज । शुकासारखे ज्ञानवैराग्यतेज।
भृशुंडिसा भक्त जो एकनिष्ठ । गुरु श्रीमदंकुशधारी वरिष्ठ ।।
(श्रेष्ठतम गुरु श्रीमद् अंकुशधारी महाराज जी, श्री मुद्‌गल के समान असाधारण भक्त, श्री शुकमुनिसमान ज्ञान एवं वैराग्यतेज से परिपूर्ण एवं श्री भृशुंडी के समान अनन्यभक्त हैं ।)

भगवान श्रीगणेश की नवधा भक्ति में से प्रत्येक के अंतर्गत श्रेष्ठतम भक्त हो चुके हैं, तथापि समूची नवधा भक्ति में परमश्रेष्ठ मुनिराज श्री मुद्‌गल ऋषि श्री गणेश जी के एकमात्र भक्तराज हैं । आधुनिक युग में भी इसी प्रकार के भक्तराज विद्‌यमान हैं जो श्री भृशुंडी महाराज जी की तरह एकनिष्ठ तथा श्री शुकमुनि की तरह विरागी हैं – अर्थात् गाणेशभक्तराज श्रीमद् अंकुशधारी महाराज और उन्हीं के समान अधिकारी उनके शिष्य महान गाणेश वरिष्ठ गाणपत श्री सद्‌गुरु हेरंबराज महाराज ! गुरु–शिष्य की इस जोड़ी ने श्रीगणेश जी के प्रत्यक्ष दर्शन प्राप्त करते हुए अपना संपूर्ण जीवन श्रीगणेशज्ञानप्राप्ति एवं लोकोद्‌धारहेतु व्यतीत किया । अत्यंत विपरीत परिस्थितियाँ, कठिनाइयों से भरा जीवन किंतु गणेशज्ञानप्राप्ति के एकमात्र जीवन लक्ष्य से युक्त उनके अनासक्त जीवनचरित को पढ़ते समय रोंगटे खड़े हो जाते हैं । इस प्रकार अथक परिश्रमों के फलस्वरूप श्रीगणेश जी की कृपा एवं श्रीयोगींद्र महाराज जी के आदेश से उन्होंने संपूर्णतया विलुप्त वैदिक गाणेशमार्ग की स्थापना करते हुए श्रीगणेशज्ञान का समूचा भंडार साधकों के लिए सुसज्जित

कर रखा । परंतु ईशनियति तथा जीवन–सीमा के कारण वे उतना प्रचार नहीं कर सके जितका कि करना चाहते थे । वही कार्य उन्हीं की आज्ञा से श्रीयोगींद्र मठ द्‌वारा जारी है । वस्तुत: गणेशभक्त कहलाने वाले प्रत्येक के लिए प्रस्तुत कार्य करना आवश्यक है । लेकिन वैसी लगन एवं बेचैनी विशेष मात्रा में दिखाई नहीं देती । 'श्रीगणेश' विषय से संबद्‌ध नित्य नूतन ग्रंथादि प्रकाशित हो रहे हैं, किंतु उनमें श्रीगणेश जी का वह ऐश्वर्य एवं महिमा प्रतिबिंबित नहीं है जो यथार्थ में विद्‌यमान है । एक तो – श्रीगणेश जी अर्थात शिवपुत्र, गौरीनंदन, गजवदन; तथा भगवान शिवजी ने उन्हें वरदान दिया–बस इतना ही ! इसी प्रकार श्रीगणेश – उपासना के संदर्भ में भी काफी कुछ प्रकाशित हुआ है । लेकिन उसमें भी अथर्वशीर्ष जैसा श्रीगणेश जी का स्तोत्र उनके माहात्म्य सहित प्रकाशित किया जाता है और आरंभ में होता है 'हरि: ॐ'! अब इसके बारे में क्या कहा जाए ? यही बात पूजा के संदर्भ में! पूजा प्रकाशित की जाती है श्रीगणेश जी की और नाम होते हैं – 'केशवाय नम:, नारायणाय नम:' । वस्तुत: प्रत्येक उपासना के विधि–विधान भिन्न–भिन्न शास्त्रों में विद्‌यमान हैं । भगवान श्रीविष्णु के पूजन में उपर्युक्त नाम उचित हैं; किंतु श्रीगणेशपूजन के लिए 'गणेशाय नम:, ढुंढिराजाय नम:, हेरंबाय नम:' इस प्रकार के अलग चौबीस नाम प्रस्तुत हुए हैं । यही बात श्रीब्रह्मणस्पति सूक्त अथवा अथर्वशीर्ष के संबंध में है । उनके पूर्व 'ॐ ब्रह्मणस्पतये नम:' कहते हुए आरंभ करना शास्त्रविहित है । किंतु इसकी ओर कोई भी गंभीरतापूर्वक ध्यान नहीं देता । यही कारण है कि सभी गणेशभक्तों तथा साधकों को श्रीगणेश जी का यथार्थ ज्ञान प्राप्त कराने के उद्‌देश्य से प्रस्तुत ग्रंथ–निर्माण का प्रयास किया गया है।

प्रस्तुत ग्रंथ प्रकाशन के बहाने मुंबई स्थित हमारे गणेशभक्त

श्री मनोज जी ने श्रीयोगींद्र सेवा का अवसर प्राप्त किया । श्री सद्‌गुरु के चरणकमलों में यही प्रार्थना है कि श्री मनोज जी समेत सभी गणेशभक्त तथा साधक श्रीगणेश जी के पूर्ण ब्रह्मरूप की महिमा को समझें, अनुभव करें और सभी के हाथों निरंतर श्रीगणेश सेवा होती रहे तथा सभी को श्रीगणेश जी की कृपा का लाभ हो।

मूलतया मराठी में लिखे प्रस्तुत ग्रंथ के उत्कृष्ट हिंदी अनुवाद द्‌वारा श्रीगणेश जी की सेवा का अवसर प्राप्त करने वाली प्रा. सौ. शैलजा मांडके, पुणे को भी श्रीगणेशकृपा की प्राप्ति हो जाए । प्रस्तुत ग्रंथ का निर्दोष टंकलेखन करने वाले श्री संतोष गायकवाड, पुणे को भी श्रीगणेश जी की कृपा का लाभ हो ।

न गणेशात् परंब्रह्म, न गणेशात् परं तपः ।।
न गणेशात् परं कर्म, ज्ञानं न गणपात परम् ।।

श्रीगणेश सद्‌गुरुकृपाकांक्षी,
– बालविनायक

।। श्रीगणेशाय नमः ।।

''ग''कार रूपंविविधं चराचरम् ।।
''ण''कारगं ब्रह्म तथा परात्परम् ।।
तयोस्थितास्तस्य गणाः प्रकीर्तिताः ।।
गणेशमेकं प्रणमाम्यहम् परम् ।।

ऐसा कोई भी नहीं है जो श्रीगणेश देवता को नहीं जानता। परंतु श्रीगणेश जी की महिमा को बहुत कम लोग ही जानते हैं । अधिकांश लोग यही मानते तथा जानते हैं कि गणेश याने गणों का अधिपति, ईश । इसी लिए उसे 'गणेश' कहते हैं । इसमें भी पुनः श्रीशिवजी का पुत्र होने के कारण भगवान शिवजी ने उन्हें शिवगणों का मुखिया बनाया - इसी लिए 'गणेश' । इसी प्रकार स्वयं भगवान शिवजी ने उन्हें सर्वपूजनीयत्व प्रदान किया । इस तरह की अज्ञान-जनित कल्पनाएँ ही सर्वत्र दिखाई देती हैं । वस्तुतः उपर्युक्त श्लोक भगवान श्री शिवजी ने माता गंगा जी को सुनाया है । 'गणेश' अभिधान का अर्थ स्वयं भगवान श्रीशिवजी ने प्रस्तुत किया है ।

'समूचा विश्व दो प्रकार का है - चर तथा अचर । स्थूल, सूक्ष्म एवं कारण स्वरूप त्रिविध विश्व चूँकि नाशोत्पत्ति से युक्त पग-पग पर परिवर्तित होने वाला है इसलिए उसे 'चर' कहा जाए तथा चौथा अव्याकृत स्वरूप तत्त्वाधारभूत विश्व सामान्यतया अविनाशी होने के कारण उसे अचर कहा जाए । ऐसा समग्र विश्व प्रकृति से उत्पन्न होता है और उसी में विलय हो जाता है इसलिए शास्त्रों ने उसे 'ग' कार रूप कहा है; क्योंकि 'ग' का शास्त्रसिद्ध

अर्थ है जाना । इसी प्रकार विश्व के आधार भूत नानाविध ब्रह्म को 'ण' कार रूप कहा है । 'ण' पद का अर्थ है शून्य । निर्गुण ब्रह्मस्थितियाँ शून्यवत प्रमाणित हुई हैं । इस अर्थ में समग्र विश्व तथा संपूर्ण ब्रह्मस्थिति याने जो भी तद्रूप है वह सब अनगिनत प्रकारों से अनुभूत होता है; उसे गणरूप अर्थात् समूहरूप मानते हुए ऐसे विश्वब्रह्मादि गणों का ईश याने नियंता । दूसरे शब्दों में स्वेच्छया उनका निर्माण कर उन्हें खिलाने वाला और अंततोगत्वा अपने में विलीन करने वाला ! इसी प्रकार गण का अर्थ है समुदाय। एकाधिक जहाँ इकट्ठा होते हैं, उन्हें 'गण' कहा जाता है । जैसे अनेक मनुष्य - मनुष्यगण, अनेक गंधर्व - गंधर्वगण इसी तरह यक्षगण, देवगण आदि । इन सभी का ईश याने नियंता वही गणेश है ।' जब गणेश शब्द का इतना व्यापक अर्थ है तो मात्र 'शिवगणों का ईश' इस प्रकार का अर्थ मानना कदापि उचित नहीं है । इसी प्रकार श्री मुद्गल पुराण में स्पष्ट शब्दों में वर्णन पाया जाता है कि श्रीगणेश जी के 'ढुंढिराज' नामाभिधान का अर्थ भी भगवान श्री शिवजी ने ही कथन किया हैं ।

भगवान श्री शिवशंकर कहते हैं :-

'वेदाः पुराणानि महेश्वरादिकाः ।
शास्त्राणि योगीश्वर देव मानवाः ।।
नागासुराः ब्रह्मगणाश्चजन्तवो ।
ढुंढन्ति वन्दे त्वथ ढुंढिराजकम्' ।।

अर्थ - षडंगों समेत चारों वेद, सभी पुराण, शास्त्र, भगवान शिवादि परमेश्वर, योगीश्वर देवता मानवादि, नाग असुरगण ही नहीं बल्कि समग्र सगुण-निर्गुण तथा सगुण-निर्गुणाभेद ब्रह्मस्थितियाँ भी जिन्हें ढूँढ़ती रहती हैं; अर्थात जिनके प्रत्यक्ष दर्शन प्राप्त करने हेतु

प्रयास करती हैं तथा दर्शन प्राप्त कर अंतिम स्वरूप ब्रह्मभावस्थिति तक पहुँचती हैं उस ब्रह्मणस्पतिरूप श्रीगणेश जी को 'ढुँढिराज' कहा जाए । मैं उन्हें प्रणाम करता हूँ ।

प्रस्तुत कथन साक्षात उमापति महेश्वर जी का है । शास्त्राज्ञा है कि ऐसे श्रीगणेश जी का आदिपूजन, स्मरण, स्तवन कर्तव्यपूर्वक करना हरएक के लिए अनिवार्य है ।

जब भगवान विष्णु-महेश्वरादि देवताओं ने भी प्रत्येक कार्य के आरंभ में श्रीगणेशपूजन तथा स्तवन किया है, तो मनुष्यमात्र के लिए उसे करना अत्यावश्यक है ।

वेदों - पुराणों में स्पष्ट उल्लेख होते हुए भी मात्र अज्ञानवश कुछ विपरीत धारणाएँ प्रस्तुत करना या बना लेना तथा बिना समझे शास्त्रविरोधी बातों को प्रसृत करना संपूर्णतया अनुचित एवं हानिकर है । जैसे कि - श्रीगणेश जी माता पार्वती के शरीर के मैल से बनाए गए हैं, उन्हें हाथी का मस्तक लगाया गया और सभी के द्वारा सर्व पूजनीयता का सम्मान प्रदान किया गया; तबसे आदिपूजन आरंभ हुआ ।

श्रीमुद्गल पुराण में उमांगमलज श्रीगणेश-अवतार की कथा विद्यमान है ।

दक्ष प्रजापति श्री शिवजी के श्वशुर ! एक बार भगवान श्री शिवजी ने श्वशुर दक्ष को प्रणाम नहीं किया । इस अपमान के फलस्वरूप शिवजी का उपमर्द करते हुए उन्हें सबक सिखाने हेतु दक्ष ने यज्ञ का आरंभ किया । उस यज्ञ को जान-बूझकर शिवभाग रहित किया । आगे चलकर भगवान शिवशंकर ने अपने गणोंसमेत आकर उस यज्ञ का विध्वंस किया । उस समय देवी पार्वती के सम्मुख दक्ष प्रजापति ने भगवान शिवशंकर की बहुत अधिक

निर्भर्त्सना की जिसके असहनीय होने से भगवती पार्वती ने देहत्याग किया और आगे चलकर वे हिमालय पुत्री उमा के रूप में अवतीर्ण हुईं । अस्तु ! यह सत्य है कि दक्षयज्ञ का विध्वंस भगवान श्रीशिवशंकर ने किया तथापि उक्त यज्ञनाश का प्रमुख कारण है यज्ञ के दौरान श्रीगणेश जी का विस्मरण !

आगे चलकर श्रीमहेश्वर जी ही अपने पति होने के कारण भगवती उमा ने भगवान शिवजी से पत्नी के रूप में अपना स्वीकार करने की प्रार्थना की । किंतु आज्ञाभंग करने वाली स्त्री उचित नहीं होती ऐसा मानते हुए शिवजी ने उनका स्वीकार नहीं किया । तब भगवान शिवजी के अलावा अन्य किसी का विचार तक न कर सकने के कारण पुन: देहत्याग के निश्चय से उन्होंने श्रीगजानन का स्मरण आरंभ किया । श्रीगणेश का स्मरण आरंभ करते ही उनकी बुद्धि में स्फुरण हुआ कि बुद्धिपति गणराज ही ब्रहमा-विष्णु-महेशादि पंचदेवताओं के भी प्रभु हैं । साक्षात् ईश्वर होते हुए भी ये सभी पराधीन साबित हो चुके हैं । फिर इनसे मनुहार क्यों किया जाए ? इनकी अपेक्षा श्री बुद्धिपति की शरण में जाना अधिक उचित है । इस प्रकार सोचकर उमा जी ने पार्थिव गणेश व्रतानुष्ठान तथा श्रीगणेश जी की कठोर आराधना की । आगे चलकर श्रीगणेशाराधना के फलस्वरूप भगवान श्रीशिवजी की मति अनुकूल हो वे स्वयं उमा के पास आए और उन्होंने उनका पत्नी के रूप में स्वीकार किया । तब उमा के कठोर तपाचरण को देख भगवान शिवजी ने उनसे कहा, ''हे उमा, कठोर तपस्या से तुम्हारा शरीर कितना मलीन हुआ है । मैं तुम्हें आशीर्वाद देता हूँ कि 'तुम्हारे शरीर की मैल सर्व पूजनीय बनेगी ।'' आगे चलकर किसी दूसरे अवसर पर भगवती माता पार्वती ने इस विचार से कि बिना उनकी अनुमति

के कोई भी घर में प्रवेश न कर सके, अपने शरीर की मैल से एक पुरुषाकृति का निर्माण किया और अपनी योगसामर्थ्य से उसमें प्राण फूँककर उसे अपना दंडधारी द्वारपाल – रक्षक बनाया । उसे आदेश दिया कि बिना उनकी अनुमति के किसी को भी भीतर प्रवेश न दे।

एक बार भगवान शिवजी के ही प्रवेश का निषेध किया जाने से अपमानित हो शिवजी का उस पुरुष से भीषण युद्ध हुआ और भगवान शिवजी के हाथों देवी पार्वती के मानसपुत्र का शिरच्छेद हुआ । इससे माता पार्वती अत्यंत संतप्त हुईं जिससे कि भयानक प्रसंग खड़ा हुआ । तब सभी देवताओं ने उस पुरुष को पुनर्जीवित करना स्वीकार किया और भगवान शिवजी के इस आदेश से कि वन में जो भी प्राणी दिखाई दे, उसका सिर लाया जाए, भृंगी, एकदंत गजराज का मस्तक ले आया ।

इसके पूर्व किसी अवसर पर प्रभु श्रीगणराज ने भगवान शिवजी को स्वप्नदर्शन दिए और प्रसादी पुष्प देते हुए कहा, ''इस प्रसादी पुष्प को जो भी कोई अपने मस्तक पर धारण करेगा, उसका मस्तक सर्वपूजनीय बन जाएगा ।'' भगवान शिवजी ने विचार किया,

'सर्वपूज्यो गणाधीशो,
नाऽन्यो ब्रह्माण्डमण्डले ।
अतो मे भक्तिमाहात्म्यं,
परीक्षार्थं ददौ प्रभुः' ।।

जब अखिल ब्रह्मांड मंडल में एकमात्र स्वानंदेश गणेश ही सर्वपूजनीय हैं, तो क्या मेरी भक्ति की कसौटी हेतु ही प्रस्तुत प्रलोभन प्रभुद्वारा उपस्थित किया गया है ? ऐसा समझकर उन्होंने प्रसादीपुष्प पूजन में ही रख दिया । कुछ काल पश्चात् जब दुर्वास मुनि उनके दर्शन हेतु पधारे तो उन्हें महान गणेशभक्त अवधूत मानते

हुए उन्हीं को प्रसादीपुष्प देने के विचार से उसका महत्त्व कथन करते हुए शिवजी ने उक्त पुष्प दुर्वासऋषि को सौंप दिया । फिर आगे चलकर महर्षि दुर्वास को मार्ग में ऐरावतारूढ देवराज इंद्र दिखाई दिए । तब प्रसादीपुष्प के लिए उन्हीं को सुयोग्य मानते हुए, उसका महत्त्व बतलाकर दुर्वासमुनि ने वह पुष्प इंद्रदेव को दे दिया । स्वभाव से राजस होने के कारण भगवान इंद्र को उसका विशेष महत्त्व प्रतीत नहीं हुआ । उन्होंने उस पुष्प को आगे फेंक दिया जो ऐरावत के मस्तक पर आ पड़ा । निर्माल्य प्रसादी का अवमान होने से बहुत बड़ा दोष घटित हुआ । उन्मत्तता के फलस्वरूप इंद्र को ऐश्वर्यपद से हाथ धोना पड़ा और गजराज ऐरावत भी घमंड से भरकर वन चला गया ।

इधर भृंगी वन पहुँच गया और उसे सर्वप्रथम यही एकदंत गजराज ऐरावत दिखाई दिया । भृंगी उसका मस्तक ले आया । सभी देवताओं ने उसे माता पार्वती के मानसपुत्र के धड़ पर लगा दिया और उसमें प्राणसंचार कराने हेतु ॐकार का ध्यान आरंभ किया । तब भक्तवत्सल श्रीगजानन ने अंशरूप में उस शरीर में प्रवेश किया और वह शक्तिपुत्र पुनर्जीवित हुआ । आत्यंतिक क्रोध से भरकर उसने भगवान श्री शिवजी के मस्तकों को काटना आरंभ किया । तब भगवान श्री शिवशंकर पंचानन थे । उनके चार मस्तकों का छेदन होने के पश्चात सभी देवादिक अत्यंत भयभीत एवं चिंताक्रांत हुए । उन्होंने श्रीगजानन रूप शक्तिपुत्र के पैर पकड़कर प्रार्थना की और पंचम मस्तक के बदले नारिकेल समर्पित किया । इससे शक्तिपुत्र प्रसन्न एवं शांत हुए और उन्होंने सभी को अभयदान दे दिया । (इसी घटना के फलस्वरूप नारिकेल को शिवमस्तक समझा जाता है और उसे शिवजी के सामने नहीं तोड़ा

जाता) । चूँकि कार्तिक शुक्ला चतुर्थी को यह घटना घटित हुई इसलिए उस दिन श्रीगजानन को नारिकेल फल अवश्यमेव समर्पित किया जाता है ।

इस शक्तिपुत्र में श्रीगजानन का जो अंशावतरण हुआ वही 'उमांगमलज' अवतार कहलाता है ।

इसका प्रमुख कारण यही है कि प्रसादी पुष्प तथा अपने भक्त द्वारा प्रदत्त आशीर्वाद को सत्य प्रमाणित करने हेतु श्री गजानन को इस रूप में अंशावतार धारण करना पड़ा । प्रस्तुत कथा श्रीमुद्गलपुराण में ग्रथित है ।

ऐसी ही एक कथा पद्मपुराण में भी विद्यमान है । किंतु इन सभी का सारांश यही है कि भक्तानुकंपक भगवान श्रीगणराज प्रभु ने अपने भक्तों की इच्छापूर्ति कराने हेतु अंशावतार धारण किए । मूल स्वानंदनाथ परमात्मा किसी का भी पुत्र नहीं है । अज्ञानवश लोग इसे शिवपुत्र, गौरीनंदन आदि समझते हैं ।

महाराज दशरथ ने अपने पूर्वजन्म में भगवान श्रीविष्णु की आराधना की और उनसे विनय किया कि वे उनके घर में पुत्र के रूप में अवतीर्ण हो जाएँ । उनकी तपस्या के फलस्वरूप वैकुंठ निवासी भगवान श्रीविष्णु ने प्रभु रामचंद्र के रूप में अवतार धारण किया । यद्यपि भगवान श्रीविष्णु तथा प्रभु रामचंद्रजी एक ही हैं; तथापि सभी लोग 'दाशरथी राम'ही कहते हैं न कि वैकुंठनिवासी भगवान श्रीविष्णु को दाशरथी कहते हैं और न मानते हैं । इसी प्रकार स्वानंदवासी श्रीमयूरेश परमात्मा किसी का भी पुत्र नहीं है प्रत्युत उसका एक कलांश अवतार है । मात्र शिवपुत्र के रूप में ही नहीं अपि तु भिन्नभिन्न अवसरों पर उन्होंने श्रीविष्णु-शिवादि देवताओं के घर ही नहीं, बल्कि मानव तथा दैत्यों के घर में भी

उनकी भक्ति के फलस्वरूप कलांशावतार ग्रहण किए हैं । यही कारण है जो कि उन्हें शिवपुत्र, पार्वतीनंदन, विष्णुपुत्र, सूर्यपुत्र आदि अनेक अभिधानों से अवतार के रूप में संबोधित किया जाता है । इसका यही तात्पर्य है कि अपने मूल रूप में स्वानंदनाथ परंब्रह्म परमात्मा किसी का भी पुत्र नहीं है ।

प्रभु श्रीरामचंद्र जी के अवतार में उनके माता-पिता ने उन्हें अनेक आशीर्वाद दिए, ''तुम पराक्रमी बनोगे, दैत्यों का विनाश करते हुए धर्म की संस्थापना करोगे'' - इत्यादि - इत्यादि ! इससे यह तात्पर्य कदापि नहीं है कि 'महाराज दशरथ के आशीर्वाद के फलस्वरूप प्रभु रामचंद्र जी ने रावणादि दैत्यों का विनाश किया और वे विश्ववंदनीय और जगन्मान्य हुए ।' मात्र उसी कार्य हेतु प्रभु रामचंद्र जी का अवतार हुआ था । यह सच है कि पुत्रभाव के अनुकूल उन्होंने सभी बातों का स्वीकार किया । इसी प्रकार भगवान श्रीगणेश जी ने जो अवतार धारण किए; उनके दौरान भगवान श्री शिवशंकर ने अपने पुत्र के लाड़ लड़ाए और इस तरह के अनेक आशीर्वाद दिए कि, ''तुम इस तरह विश्ववंदनीय बनोगे, मेरे सभी गणों के मुखिया हो जाओगे, सर्वपूजनीय बनोगे' इत्यादि-इत्यादि !

फिर भी श्रीगणेश जी का सार्वभौमत्व अनादि है । ब्रह्मांड पुराण में उनका वर्णन इन शब्दों में प्राप्त होता है :-

'ॐकाररूपी भगवान, यो वेदादौप्रतिष्ठित:' ।

अपने बुनियादी रूप में भगवान श्रीगणेश सर्वादिपूजनीय, सर्वपूजनीय ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पति हैं । किसी के द्‌वारा उन्हें सर्वपूजनीयत्व प्रदान करने का कोई सवाल ही नहीं उभरता । हाँ! मात्र पुत्रभाव से आशीर्वादादि ग्रहण करना बस इतना ही !

महेश्वरादि सभी देवताओं ने विघ्नकाल में श्रीगणेश जी की आराधना करते हुए सामर्थ्य की प्राप्ति करा ली और कतिपय स्थानों पर श्रीगणेश जी की स्थापना की । परिणामतया वहाँ श्रीगणेश-तीर्थस्थान निर्माण हुए । मधु-कैटभ नामक दैत्यों के विनाश के लिए सामर्थ्य-प्राप्ति के उद्‌देश्य से भगवान श्रीविष्णु ने सिद्‌धटेक नामक स्थान में तपस्या की और श्रीगणेश जी को प्रसन्न कराते हुए दैत्यों का विनाश किया । उक्त सिद्‌धटेक स्थान विष्णुस्थापित श्रीगणेश तीर्थस्थान बना । दैत्य त्रिपुरासुर के विनाश के लिए भगवान श्री शिवजी ने महागणपतिक्षेत्र रांजणगाँव में श्री गणेशाराधना की और श्रीगणेश की कृपा के फलस्वरूप दैत्य का विनाश करते हुए वहाँ श्रीगणेश जी की मूर्ति की स्थापना की ।

गौतम ऋषि के अभिशाप से मुक्त होने के लिए इंद्रदेव ने कदंबक्षेत्र में श्रीगणेशाराधना की । इंद्रस्थापित श्रीगणेश मूर्ति 'चिंतामणि' के नाम से आज भी विद्‌यमान है । श्री ब्रह्माजी ने सृष्टिसामर्थ्य - प्राप्ति हेतु थेऊर गाँव में श्रीगणेशाराधन किया । तारकासुर दैत्य देवताओं के लिए अत्यंत उत्पीड़क साबित हुआ था । शिवपुत्र स्कंद के हाथों उसका विनाश होना विधि का लेखा था । तथापि बिना श्रीगणेशस्मरण के युद्‌ध करने से तारकासुर के द्‌वारा स्कंद का पराभव हुआ । तब देवताओं के गुरु ने उसे समझाया कि, ''यद्‌यपि यह सत्य है कि तुम्हारे ही हाथों इस दैत्य का विनाश होने वाला है तथापि श्रीगणेश जी की कृपा के अभाव में होनी का घटित होना भी संभव नहीं है ।'' तब स्कंद ने ऐलापुर (एलोरा) में जाकर श्रीगणेश जी की कठोर आराधना की तथा 'लक्षविनायक' गणेश की स्थापना की और उन्हीं की कृपा से तारकासुर का विनाश किया ।

प्रभु श्रीरामचंद्र जी ने हंपी में श्रीगणेशाराधन करते हुए 'हेरंब' नामक श्रीगणेशमूर्ति की स्थापना की । सूर्यपुत्र शनिदेव ने पिता सूर्य से गणेशोपासना प्राप्त करते हुए शाप विमोचन के लिए तथा श्रीअवधूत दत्तात्रेय भगवान ने शांति प्राप्ति हेतु राक्षसभुवन में गणेशाराधन करते हुए विज्ञानगणेश तीर्थस्थान की स्थापना की । संसार में कोई देवि-देवता नहीं है जिसने गणेशाराधना नहीं की है । भगवान श्री गोपालकृष्ण द्वारा भी पुष्टिपति गणेशाराधना तथा श्रीसत्यविनायक व्रतानुष्ठान किया जाना सर्वश्रुत है । सभी देवताओं ने गणेशाराधना अवश्य की है; लेकिन उनके भक्तों द्वारा दुरभिमानवश श्री गणेशस्तवन न किया जाना उन्हीं को पसंद नहीं आता और संबंधित देवता अपने भक्त से अप्रसन्न हो जाते है ।

दैत्यराज बलि महान विष्णुभक्त था । उसने सौ अश्वमेध यज्ञों का संकल्प करते हुए यज्ञारंभ किया । लेकिन जानबूझकर श्रीगणेशस्मरण करना टाल दिया । उसके गुरु शुक्राचार्य ने उसे बार-बार श्रीगणेशस्मरण करने के लिए कहा । लेकिन इससे अपने इष्टदेवता को न्यूनता प्राप्त होगी इस विचार से उसने जानबूझकर श्रीगणेशस्मरण एवं पूजन नहीं किया । परिणामतया विघ्न निर्माण हुआ । चिंतित होकर इंद्र ने भगवान विष्णु से बलि के यज्ञ का विनाश करने की प्रार्थना की । उनकी प्रार्थना का स्वीकार करते हुए भगवान श्रीविष्णु ने भी अपने ही भक्त के यज्ञ को रोकने के लिए वामनावतार धारण किया और यज्ञ के विनाश की सामर्थ्य प्राप्त करने के लिए अदोष क्षेत्र में वक्रतुंड श्रीगणेश की तपस्या की और सामर्थ्य प्राप्त की । तत्पश्चात् यज्ञस्थान पर जाकर त्रिपाद भूमि की याचना की और यज्ञ रुक गया । तब राजा बलि को पश्चाताप हुआ कि, 'जिस देवता हेतु गुरु के कहने पर भी मैंने श्रीगणेशपूजन

नहीं किया वे ही मेरे इष्टदेवता भगवान श्रीविष्णु मेरे यज्ञ का विनाश करने हेतु पधारे हैं ।' तब सभी का विघ्नकर्ता बुद्धिपति गणराज ही हैं ऐसा मानते हुए राजा बलि श्रीगणेशजी की शरण में चला गया । तदनंतर प्रभु श्रीगणराज की कृपा से अगले मन्वंतर में बलि इंद्र बना। यही बात बाणासुर के बारे में भी घटित हुई । इसी लिए 'करुणाष्टक' में श्री अंकुशधारी महाराज जी ने उचित वर्णन किया है :-

'बळी वैष्णवांचा शिरोरत्न गाजे ।
परी का हरीने, तया दु:ख दीजे ।।
तया शेवटी तूचि झालासी पाता ।
मयूरेश्वरा सत्वरे धाव आता ।।
पहा बाण तो शैव विख्यात लोकी ।
तया शेवटी शंकरे लोटिला की ।।
तुवां रक्षिले त्यातशा दुष्टचेता ।
मयूरेश्वरा सत्वरे धाव आता ।।

(**अर्थात्** - राजा बलि मूर्द्धन्य वैष्णव के रूप में विख्यात था; फिर भी उसे साक्षात् हरि ने - विष्णु ने - ही क्यों दु:ख दिया? उसका उद्धार अंततोगत्वा तुम्हीं ने किया । अब हे मयूरेश्वर भगवान, हमारे लिए भी तुरंत आ जाइए ।

बाणासुर भी संसार में श्रेष्ठ शैव - शिवभक्त - के रूप में प्रसिद्ध था; लेकिन स्वयं शिवजी ने ही उसे दुत्कार दिया । ऐसे दुष्टबुद्धि की भी तुमने रक्षा की । इसलिए हे भगवान मयूरेश्वर, अब अविलंब आ जाइए ।)

अस्तु ! सभी देवि-देवताओं तथा महान संतों ने भी श्रीगणेश स्तुति से ही अखंड शांति प्राप्त की है । लेकिन वेदों-पुराणों में

कहीं भी वर्णन प्राप्त नहीं होता कि श्रीगणेश ने किसी देवता की स्तुति की हो अथवा स्थापना की हो । ऐसा होना संभव भी नहीं है; क्योंकि विघ्नहर चिंतामणि जो स्वयं विनायक परमात्मा हैं उसके लिए किसी की शरण में जाने या किसी से त्राण पाने की कोई आवश्यकता ही नहीं है । तथापि कुछ अज्ञानी लोग अकारण ही द्वेषमूलक कथाओं को विपरीत रूप में प्रसारित करने का प्रयास करते हैं । एक स्थान पर ऐसी ही अज्ञान-मूलक कथा दी गई है कि श्रीगणेश ने रावण के घर पशुचारण किया और शिवलिंग की स्थापना की । वस्तुत: यथार्थ कथा एवं पुराणों में निहित संपूर्ण ज्ञान को बिना समझे अधूरी बातें प्रकाशित करना अयोग्य है । पुराण में अंतर्भूत कथा इस प्रकार है :-

एक बार लंकापति रावण ने भगवान शिवजी को प्रसन्न कराते हुए वरदान माँगा और वरदान के रूप में आत्मलिंग की इच्छा की । तब वरदान के कारण आत्मलिंग देना अनिवार्य बन गया था; किंतु उसे गलत हाथों में सौंपना भगवान शिवजी को अत्यंत क्लेशकर प्रतीत हो रहा था । इसलिए उन्होंने श्रीगणेश जी के लिए गुहार लगाई और संकट से मुक्त करने की प्रार्थना की । श्रीगणेश जी ने उन्हें आश्वस्त कराया जिसके फलस्वरूप भगवान शिवशंकर ने इस शर्त के साथ आत्मलिंग सौंप दिया कि अपवित्र स्थिति में उसे अपने पास न रखा जाए; तथा स्वस्थान पहुँचने तक उसे पृथ्वी पर न रखा जाए; अन्यथा वह वहीं स्थिर हो जाएगा । इसके अनुसार रावण उसे ले तो गया किंतु मार्ग में उसे लघुशंका की भावना होने पर सवाल खड़ा हुआ कि आत्मलिंग किसे सौंपा जाए ? तब भगवान शिवजी की आर्त प्रार्थना से महागणपति चरवाहे का रूप धारण कर वहाँ आ गए और उन्होंने रावण से कहा, ''विशिष्ट

अवधि तक ही मैं शिवलिंग को हाथों में उठा रखूँगा; किंतु उस नियत अवधि में यदि तुम नहीं लौटे तो मैं उसे वहीं छोड़ दूँगा ।'' रावण ने इस कथन की स्वीकृति दे दी किंतु लंबी अवधि तक उसकी लघुशंका की समाप्ति के कोई चिह्न नहीं उभर रहे थे । अर्थात यह भी ईश्वर की माया का ही खेल था । अस्तु ! तब चरवाहावेशधारी महागणपति ने कई बार पुकारा और अंत में उस आत्मलिंग को वहीं छोड़ दिया । उसी क्षण वह पृथ्वी में गड़ गया। इसे देख रावण ने क्रुद्ध होकर अपना संपूर्ण बल लगाकर उसे हिलाया जिससे उसका आकार गाय के कर्ण की तरह हुआ; लेकिन शिवलिंग अपने स्थान से टस-से-मस नहीं हुआ । इस तरह भगवान शिवजी का कार्य संपन्न हुआ और वह स्थान श्री गोकर्ण महाबळेश्वर के नाम से आज भी विख्यात है । इस प्रकार भगवान श्रीगणराज प्रभु ने अपने भक्त के संकट को टाल दिया । मात्र, कुछ अज्ञानी लोग इसका तात्पर्य यही निकालते हैं कि श्रीगणेश जी ने शिवलिंग की स्थापना की । अब इस प्रकार के अज्ञान का क्या उपाय हो सकता है ?

बहुत-से लोग वितर्क करते हैं कि मात्र श्रीगणेश जी ही ब्रह्म क्यों हैं ? पुराणों में तो सभी देवताओं को ब्रह्म कहा गया है । इसी प्रकार सभी देवताओं को संबंधित पुराणों में 'आत्मा' के रूप में संबोधित किया है । तो भी इनकी क्या विशेषता है ? यहाँ एक बात की ओर ध्यान देना आवश्यक है कि सभी को ब्रह्म कहा गया है और वह सत्य ही है । किंतु अथर्वशीर्ष में श्रीगणेश जी के लिए 'त्वं प्रत्यक्षं ब्रह्मासि' कहा गया है । अर्थात मात्र ब्रह्म ही नहीं अपि तु अन्न, प्राण, मनोब्रह्म, समब्रह्म नेति आदि सभी ब्रह्मों का पति 'ब्रह्मणांब्रह्मणस्पति' इस रूप में श्रीगणेश जी काही वर्णन

प्राप्त होता है । इसी प्रकार सभी पुराणों में संबंधित देवताओं का वर्णन 'तुम आत्मा हो' इन शब्दों में किया ही गया है । सूर्यनारायण को जगदात्मा कहा गया है । श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने आत्मा की व्याख्या करते हुए कहा है 'नैनंछिन्दन्तिशस्त्राणि' । श्रीमुद्गलपुराण में एक कथा विद्यमान है । माली तथा सुमाली नामक दो शिवभक्त दैत्य थे । भगवान शिवजी के वरदान के फलस्वरूप उन्होंने सूर्य के समान अलौकिक विमान प्राप्त किया । स्वयं को प्रतिसूर्य मानते हुए, नित्य कालानुवर्ती सूर्य के अस्तंगत होने के पश्चात अपने देदीप्यमान विमान पर आरूढ हो वे दोनों प्रतिसूर्य की तरह भ्रमण करते थे । परिणामतया रात्रि का आगमन ही नहीं होता था । सदैव दिन ही भासमान होता था । धर्म के लुप्त होने की स्थिति आ गई । इससे सभी को परेशान देख सूर्यनारायण ने क्रुद्ध हो माली-सुमाली दैत्यों पर ज्वाला फेंकी । मूर्च्छित होते समय दोनों ने भगवान शिवजी को सहायता हेतु पुकारा । तत्क्षण प्रकट हो भगवान शिवशंकर ने सूर्य का शिरच्छेद किया । तब पूरे संसार में हाहाकार मच गया । सभी ऋषि-मुनि, देवि-देवता श्री शिवजी से कहने लगे कि असमय संहार करते हुए उन्होंने प्रलय को निमंत्रण कैसे दिया ? यदि सूर्य ही नहीं रहा तो जगत् का संचालन कैसे होगा ? तब हताश हो सभी श्रीगणेश जी की शरण में चले गए । आगे चलकर श्रीगणेश जी का 'लोलार्कवरद' नामक अवतार हुआ जिन्होंने सूर्यनारायण को पुनर्जीवित किया इत्यादि विस्तृत कथांश पुराण में अंतर्भूत है । यहाँ विचारणीय बात है कि 'आत्मा' के रूप में जिसका वर्णन प्राप्त होता है, उसी पर इस प्रकार की आपत्ति क्यों आई ? इससे यही बात स्पष्ट होती है कि सभी ब्रह्म हैं; किंतु ब्रह्मणस्पति एकमात्र भगवान श्रीगणेश जी ही हैं । 'आत्मा'

कहकर सभी को संबोधित किया है अवश्य; तथापि 'त्वं साक्षादात्मासि नित्यम्' मात्र श्रीगणेश के लिए ही कहा गया है । इस प्रकार स्वानंदेश भगवान श्रीगणेश की प्रिय नवधा भक्ति में श्रेष्ठतम भक्तराज विद्यमान हैं । स्वयं प्रभु श्री गणराज ने मुद्गल मुनि से कहा है :-

'श्रवणेमद्गुणानां यदाधिक्यं खलु विद्यते ।
तत्रवै कार्तिकेयश्च भक्तराजः प्रकीर्तितः ।।
कीर्तने भक्तराजस्तु सूर्य आत्मा शरीरिणाम् ।
स्मरणे रामचन्द्रो वै भक्तराजः स्मृतो बुधैः ।।
पार्वती पादसेवायां भक्ताधीशाच संस्मृता ।।
महाविष्णुः स्वयंराजा भजतामर्चने मम ।।
वन्दने भक्तराजेन्द्रः शङ्करः सर्वभावतः ।।
दास्यं भक्ताधिपः प्रोक्तो रामो वैजमदग्निजः ।।
सख्ये चतुर्भुजः साक्षाद्भक्तानामधिपः स्मृतः ।।
वैयासकिः शुकभूपो मयित्वात्मनिवेदिनाम् ।।

(श्रीमु. पुराण, खंड १, अध्याय २२)

श्रवणभक्ति में कार्तिकेय, कीर्तनभक्ति में सूर्यनारायण, स्मरणभक्ति के अंतर्गत प्रभु श्रीरामचंद्र, पादसेवनांतर्गत माता पार्वती, अर्चनभक्ति में महाविष्णु, वंदनभक्ति में भगवान शिवशंकर, दास्यभक्त्यांतर्गत परशुराम, सख्यभक्ति में ब्रह्मदेव एवं आत्मनिवेदन भक्ति के अंतर्गत शुकमुनि ये सभी श्रीगणेश जी के नवभक्तराज हैं । ये सभी श्रीगणेशस्तवन एवं अग्रपूजन करते हैं । अत: प्रत्येक भक्ति संप्रदाय को - भले ही वह किसी भी देवता का उपासक - आराधक हो- चाहिए कि श्रीगणेश स्मरण के अनंतर ही अपनी-अपनी उपासना करे । तभी संबंधित देवता संतुष्ट हो सकते हैं ।

जे जे जगी थोर म्हणोनि झाले ।

त्यांही परेशा तुज सेवियेले ।।

(**अर्थात् :–** इस संसार में जो महान विभूतियाँ हो चुकी हैं; हे परमात्मा, उन्होंने आपकी आराधना – सेवा – की है ।)

सभी महान संतों–भक्तों ने इसी प्रकार श्रीगणेश का वर्णन किया है । किसी भी संप्रदाय में जो भी सच्चे संत या भक्त हो चुके हैं तथा आज भी विद्यमान हैं; उनमें से प्रत्येक ने श्रीगणेश–स्तवन तथा वंदन किया ही है । संत ज्ञानेश्वर जी ने श्रीगणेश की अतीव सुंदर एवं परिपूर्ण स्तुति की है । भक्त एकनाथ महाराज, संत नामदेव, भक्त सूरदास, भक्तशिरोमणि तुलसीदास आदि सभी संतों–भक्तों ने यथोचित श्रीगणेश स्तवन किया है । भक्तप्रवर तुकाराम महाराज ने भी कतिपय अभंगों (छंद), पदों द्वारा श्रीगणेश – स्तुति की है :–

'अकार तो ब्रह्मा, उकार तो विष्णू मकार महेशू बोलियेला ।

ऐसे तिन्ही देव, जेथुनी उत्पन्न, तो हा गजानन, स्वामी माझा।

तुका म्हणे ऐसी, आहे वेद वाणी, पाहावे पुराणी, व्यासाचिया।

ॐकार प्रधान रूप गणेशाचे' ।।

(**अर्थात्** :– ॐकार हे अंतर्गत 'अ'कार को ब्रह्माजी (सृष्टि अथवा उत्पत्ति), 'उ'कार को भगवान विष्णु (स्थिति) और 'म'कार को भगवान शिवजी (लय) के रूप में माना जाता है । इन तीनों देवताओं का निर्माण जिस ॐकार से हुआ है वह और कोई नहीं मेरे स्वामी भगवान श्रीगजानन हैं । तुकाराम महाराज कहते हैं, वेदों एवं महर्षि व्यास रचित पुराणों ने भी कहा है कि भगवान श्रीगणेश साक्षात् ॐकार स्वरूप हैं ।)

तुकाराम महाराज जैसे महान, श्रेष्ठ भक्त ने कितना यथार्थ गणेशस्तवन किया है । श्रीवासुदेवानंद सरस्वती तथा महान विभूति श्रीधरस्वामी महाराज ने दत्तभक्ति के चूड़ामणि होते हुए भी समंत्रक संस्कृत गणेशस्तुति, स्तोत्रों तथा अभंगों (छंद) के माध्यम से श्रीगणेश जी की महिमा का वर्णन किया है । आदि शंकराचार्य ने भिन्न-भिन्न छंदों में, भगवान श्रीगणेश का परमश्रेष्ठत्व प्रदर्शित करने वाले स्तोत्रों की रचना की है । मोरेश्वर तीर्थस्थान के श्रीगणेशोपासना प्रधान ज्ञानप्रदायक गाणेशजगद्गुरुपीठ की स्थापना भी आचार्य के द्वारा ही हुई है । वहाँ गिरिजासुत श्री योगींद्र जी को संपूर्ण गाणेशज्ञानसंपदा प्रदान करने के पश्चात् धर्मप्रचार हेतु चारों दिशाओं में शृंगेरी आदि जगद्गुरु पीठों की संस्थापना की । यही नहीं शारदापीठ को मणिगर्भ श्रीगणेशमूर्ति प्रदान करते हुए प्रत्येक पीठ में श्रीगणेश अग्रपूजन तथा उपासना की अनिवार्यता का नियम ही बना दिया है । किंतु वर्तमान युग में अन्यत्र गणेश-उपासना यथोचित रूप में प्रतीत नहीं होती ।

यद्यपि श्री ब्रह्मचैतन्य महाराज जी ने आजीवन रामनाम का प्रचार-प्रसार किया; तथापि उन्होंने गोंदवला में सर्वप्रथम श्री शमीविघ्नेश गणेश की मूर्ति की स्थापना की । 'मंगलांचा मंगल, मंगलमूर्ती' (**अर्थात् :-** मांगल्य की साक्षात् मांगलिकता याने मंगलमूर्ति) इन शब्दों में उन्होंने श्रीगणेश जी का उचित वर्णन किया है । श्रीसमर्थ रामदास ने एक स्वतंत्र समास में ही गणेशस्तवन किया है । उन्होंने कतिपय स्तोत्रों, आरतियों तथा अभंगों (छंद) की रचना की ।

'येतां कृपेचिनिज उडी ।
विघ्ने कांपती बापुडी ।

होऊनी जाती देशधडी । नाममात्रे ।
म्हणुनी नामें विघ्नहर ।
आम्हां अनाथांचे माहेर ।
आदि करूनि हरीहर । अमर वंदिती' ।।

(**अर्थात्** :- श्रीगणेश जी की कृपा होते ही सभी संकट थरथर काँपने लगते हैं और उनके स्मरण मात्र से ही संकटों का विनाश होता है । इसी लिए वे विघ्नहर कहलाते हैं जो अनाथ-आश्रयहीन, दीन लोगों के लिए पिता समान हैं । यही कारण है कि हरि-हर तथा सभी देवता उनका वंदन सर्वप्रथम करते हैं ।)

इस प्रकार समर्थ रामदास जी ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि श्रीगणेश का आदिपूजन एवं स्मरण साक्षात् हरिहर भी करते हैं । स्वयं उन्होंने भी इसका पालन किया । लेकिन अनेक स्थानों पर संप्रदायों में लोगों को 'श्री गणेशाय नम:' के बिना ही उपासना करते हुए देखा जाता है जो कि संपूर्णतया विपरीत है ।

प्रत्येक ग्रंथ के आरंभ में भी 'श्री गणेशाय नम:' की सीधी उपेक्षा की जाती है । वस्तुत: किसी भी ग्रंथ के आरंभ में श्रीगणेशस्तवन अनिवार्य रूप में होना ही चाहिए । शुभकार्य ही नहीं किसी भी वैदिक, लौकिक या पितृकार्य में भी श्रीगणेशस्मरण अवश्यंभावी है और इसके लिए प्रमाण विद्यमान है । स्पष्ट शास्त्रादेश है कि

'शुभाशुभे वैदिक लौकिकेच,
त्वमर्चनीय: प्रथम: प्रयत्नात् ।।

अनेक स्थानों पर मूल ग्रंथ की समीक्षा करते समय कई लोग निजी मतों का भी अंतर्भाव उसमें करते हैं । आगे चलकर बहुधा वे ही रूढ़ हो जाते हैं । संतों के बारे में भी यही होता है।

कुछ लोग बीच में ही उनके नाम पर कुछ प्रक्षेप कर देते हैं । श्री गुरुगीता के संदर्भ में भी इसी प्रकार का अनुभव हो रहा है । लगभग चार गुरुगीताओं को देखने का अवसर प्राप्त हुआ किंतु हरएक की श्लोक - संख्या भी भिन्न और बहुत-से श्लोक भी भिन्न ! इससे बड़ी भ्रांति निर्माण होती है । अंततोगत्वा जो साहित्य वेदों और पुराणों से सहमत होता है; उसी को सत्य मानना चाहिए।

कुछ समय पूर्व एक सांप्रदायिक ग्रंथ में भक्तप्रवर तुलसीदास के नाम पर इस प्रकार की पंक्तियाँ पाई गईं :-

'महामंत्र जोई जपत महेशू । कासीमुकुती हेतु ऊपदेसु ।।
महिमा जासू जानगनराऊ । प्रथम पूजियत नामप्रभाऊ ।।

वस्तुत: ये पंक्तियाँ कितनी विपरीत हैं । इनका अर्थ यही होता है कि 'रामनाम जाप से श्रीगणराज ने सर्वपूजनीयत्व का सम्मान प्राप्त किया ।' अब ऐसे कथन को क्या कलियुग का प्रभाव माना जाए ? यह तो सर्वश्रुत है कि स्वयं भक्तप्रवर तुलसीदास ने रामचरितमानस में श्रीगणेशस्तुति तथा प्रार्थना की है । भक्ति के अनन्यसाधारण ग्रंथ विनयपत्रिका की गणेशस्तुति में वे कहते हैं :-

मोदक - प्रिय, मुद-मंगल-दाता ।
विद्या-वारिधि, बुद्धि-विधाता ।
माँगत तुलसिदास कर जोरे ।
बसहिं रामसिय मानस मोरे ।।

इन शब्दों में स्पष्ट रूप में श्रीगजानन की प्रार्थना करने वाले तुलसीदास जी ऊपरुल्लिखित वेदविपरीत काव्य-रचना क्यों करेंगे ? यह तो स्पष्ट है कि किसी - न - किसी ने स्वरचित काव्यपंक्तियों का अंतर्भाव तुलसीदास जी के नाम पर किया होगा ।

भक्तप्रवर तुलसीदास जी जिनका अवतार माने जाते हैं वे आदिकवि महर्षि वाल्मीकि - जो रामायण के रचयिता हैं; उन्होंने स्वयं भगवान श्रीगणेश जी के उत्कृष्ट 'कव्यष्टक' स्तोत्र की रचना की है। ब्राह्म पुराण, उत्तरखंड में वह अंतर्भूत है । उसे प्रस्तुत किया जा रहा है :-

आदिकवि श्री वाल्मीकि रचित कव्यष्टक नाम गणेशस्तोत्र।।

चतु:षष्टी कोट्याख्य विद्याप्रदंत्वां ।
सुराचार्य विद्या प्रदानापदानं ।
कलाभीष्ट विद्यार्पकंदंतयुग्मं ।
कविंबुद्धिनाथं कवीनां नमामि ।।१।।
स्वनाथं प्रधानं महाविघ्ननाथं ।
निजेछ्चा विसृष्टांड वृंदेशनाथं ।
प्रभुं दक्षिणास्यस्य विद्याप्रदं त्वां ।।
कविंबुद्धिनाथं कवीनां नमामि ।।२।।
विभोव्यासाशिष्यादिविद्या विशिष्ट ।
प्रियानेकविद्या प्रदातार माद्यम् ।।
महाशाक्त दीक्षा गुरो: श्रेष्ठ्य दं त्वां ।
कविंबुद्धिनाथं कवीनां नमामि ।।३।।
विधात्रे त्रयीमुख्य वेदांश्च योगं ।
महाविष्णवे चागमान् शंकराय ।।
दिशंतंच सूर्याय विद्यारहस्यं ।
कविंबुद्धिनाथं कवीनां नमामि ।।४।।
महाबुद्धि पुत्राय चैकं पुराणं ।
दिशंतं गजास्यस्य माहात्म्ययुक्तं ।।
निजज्ञान शक्त्या समेतं पुराणं ।

कविंबुद्धिनाथं कवीनां नमामि ।।५।।

त्रयीशीर्षसारं रूचानेक मारं ।

रमाबुद्धिदारं परंब्रह्मपारं ।।

सुरस्तोमकायं गणोधादिनाथं ।।

कविंबुद्धिनाथं कवीनां नमामि ।।६।।

चिदानंदरूपं मुनिध्येयरूपं ।

गुणातीतमीशं सुरेशं गणेशं ।।

धरानंद लोकाधिवासं प्रियंत्वाम् ।।

कविंबुद्धिनाथं कवीनां नमामि ।।७।।

अनेकावतारं सुरक्ताब्जहारं ।

परंनिर्गुणं विश्वसद्ब्रह्मरूपम् ।।

महावाक्यसंदोदृतात्पर्यमूर्तिं ।।

कविंबुद्धिनाथं कवीनां नमामि ।।८।।

इदंयेतु कव्यष्टकं भक्तियुक्ता ।

त्रिसंध्यं पठंते गजास्यं स्मरंत: ।।

कवित्वं सुवाक्यार्थ मत्यद्भुतंते ।

लभंते प्रसादाद् गणेशस्यमुक्तिम् ।।९।।

उपर्युक्त स्तोत्र से सभी बातें स्पष्ट हो जाती हैं । श्रीरामचरितमानस के बालकाण्ड में भक्त तुलसीदास श्रीगणेशवंदना करते हैं :-

'वर्णानामर्थसंधानां रसानां छन्दसामपि ।

मङ्गलानां च कर्त्तारौ वन्दे वाणीविनायकौ' ।।

ऐसा होते हुए भी किसी संत या भक्त के नाम पर अनुचित तथा स्वरचित अंश को प्रकाशित करना कदापि उचित नहीं है । इसी प्रकार विदर्भस्थित गुग्गुलादेवी के मंदिर में देवी की एक आरती

सुनी गई । उसमें एक पद इस प्रकार है – 'गजमुखी तुज स्तविले'। उनसे पूछा कि यह संदर्भ किसमें उल्लिखित है ? कौन – से पुराण में विद्यमान है ? तब उन्होंने जवाब दिया, 'किसी ने इसकी रचना की है और हम बस उसको दोहराते हैं' । इस तरह बिना किसी प्रमाण या आधार के अपने मन से रचकर उसका प्रचार–प्रसार करना कतई उचित नहीं है ।

विभिन्न संप्रदायों से संबद्ध संतों और भक्तों के जीवन-चरित में अलग–अलग प्रसंगों में नाम महिमा के सिलसिले में इस प्रकार के उल्लेख पाए जाते हैं कि 'शिवजी ने रामनाम को अपने मुख में धारण किया' अथवा अन्यत्र 'प्रभु रामचंद्र जी ने शिव–पूजन किया' इत्यादि । कल्पभेद से वे उचित भी हैं; शास्त्र–विरोधी नहीं हैं । क्योंकि प्रत्येक ईश्वर का अपना एक कल्प होता है और उस कल्प में वह देवता प्रमुख या प्रधान होता है और अन्य सभी उसके अधीन होते हैं । जैसे विष्णु–कल्प में प्रधान देवता भगवान विष्णु और अन्य सभी देवि–देवता उनके अधीन होते हैं । इसी प्रकार शिवकल्प में भगवान शिवशंकर प्रधान देवता तथा अन्य ईश्वरादि उनके अधीन ! इस दृष्टि से इन महानुभावों के वचन सही हैं । किंतु प्रस्तुत सिद्धांत श्रीगणेश जी पर लागू नहीं होता; क्योंकि श्रीगणेश पंचेश्वर नहीं 'पंचेशवरद' हैं ।

श्रीमद्गणेशगीता में भगवान श्रीगणेश कहते हैं :-

'अहमेवमहाविष्णुरहमेव सदाशिवः अज्ञानान्मां न जानन्ति, जगत्–कारण कारणम् ।' श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है 'सभी देवता, ईश्वर में ही हूँ' । तथापि ध्यातव्य है कि 'मैं ही श्रीगणेश हूँ' ऐसा कहीं भी नहीं कहा है । अपने–अपने देवता की उपासना–आराधना का यथोचित अभिमान सभी को होना

चाहिए और होता भी है । किंतु दुरभिमान कभी न हो । भक्त रामचंद्र डोंगरे महाराज भागवत कथा तथा रामायण का कथन करते थे; किंतु हर बार आरंभ करते समय 'ॐ स्वस्ति श्री गणेशाय नम:' कहकर ही कथा का आरंभ करते थे ।

यहाँ शायद कुछेक इस प्रकार का आक्षेप ले सकते हैं कि यदि सभी संतों - भक्तों को श्रीगणेश जी की महिमा स्वीकार थी और उन्होंने उस प्रकार के स्तुति-स्तोत्रों की रचना भी की थी, तो उन्होंने अपनी-अपनी उपासना-आराधना का त्याग करते हुए श्रीगणेश जी की भक्ति क्यों नहीं की ? प्रस्तुत शंका व्यावहारिक दृष्टि से अवश्य उचित है । लेकिन ऐसा कहना तो इस प्रकार का सवाल उठाने जैसा होगा कि अध्ययन के लिए अनेक विषय विद्यमान होते हैं जिनमें से विज्ञान को सर्वश्रेष्ठ माना जाता है । तो फिर क्यों न सभी एकमात्र उसी विषय को अध्ययन हेतु ग्रहण करते ? अथवा उन्हें मात्र वही विषय क्यों न दिया जाता ? इसी प्रकार सभी परब्रह्म-परमात्मा के ही कलांश रूप हैं । हर एक को अपनी आध्यात्मिक उन्नति एवं क्षमता के अनुसार परमात्मा की ओर जाना पड़ता है । उसी के अनुसार प्रत्येक मार्ग के लिए संबंधित भक्तों या संतों के अवतार होते हैं । ये महान विभूतियाँ भले ही किसी भी संप्रदाय से संबद्ध हों, आत्मसाक्षात्कार के अनंतर उनका श्रीगणेशज्ञान भी परिपूर्ण हो जाता है और अपने हृदय में वे सबकुछ जानते ही हैं तथा उसके अनुकूल उनका कार्य भी निरंतर चलता ही रहता है । इसी प्रकार विशिष्ट आध्यात्मिक स्तर पर वे सभी एकाकार ही होते हैं । इसी लिए परमात्मा द्वारा सौंपा गया जगदुद्धार का कार्य वे अपने-अपने मार्ग से समुचित रूप में निभाते रहते हैं । तथापि सभी कर्तव्य-कर्मों को निभाते हुए भी वे

जीवन्मुक्त ही रहते हैं । जैसे-समर्थ रामदास-स्वामी तथा श्री ब्रह्मचैतन्य महाराज का अवतार रामनाम के प्रचार-प्रसार हेतु हुआ और उस कार्य को उन्होंने यथोचित रूप में निभाया । श्री एकनाथ महाराज तथा श्री ज्ञानेश्वर महाराज का अवतार श्री विट्ठल-भक्ति के प्रचार-प्रसार के लिए हुआ । श्रीमद्गणेश योगींद्राचार्य महाराज, श्रीमद्अंकुशधारी महाराज, श्रीमद् सद्गुरु हेरंबराज महाराज का अवतार श्रीगणेश-नाम-महिमा लोकमानस तक पहुँचाकर आभासभक्ति का परिहार करने हेतु हुआ । यह बात सच है कि हरि-हर में भेद न किया जाए । तथापि इसका तात्पर्य यह भी नहीं है कि दुरभिमानपूर्वक वेद-शास्त्रों के विपरीत मनमानी की जाए । अन्यथा 'सभी एक ही है, चाहे जैसा करो, भगवान तक अवश्य पहुँच जाता ही है' इस प्रकार के अविचार के फलस्वरूप 'कण्ठे तु तुलसीमाला, ललाटे भस्मधारणम् । मुखे रामनाम स्मरणं, गृहे हेरम्ब पूजनम् ।' इस तरह गले में तुलसी की माला, भालप्रदेश पर भस्म, मुख से रामनाम का जाप और घर में गणेश पूजन' जैसी आभासस्थिति हो जाती है । अत: समझदार एवं साधक इस बात को समझ लें । प्रत्येक देवता की उपासना-पद्धति, मंत्र आदि संपूर्ण बातें स्वतंत्र शास्त्र में प्रस्तुत हैं । ऐसा होते हुए भी 'चाहे जैसा करो, किसी भी मंत्र के पाठ से,चाहे जो पूजा करो, अंततोगत्वा ईश्वर एक ही है' इस प्रकार की धारणा है तो फिर इतनी उपासना - पद्धतियों, विधि-विधानों की क्या आवश्यकता है ? अत: इन सभी बातों के लिए संप्रदाय महत्त्वपूर्ण है । प्रत्येक साधक को अपने-अपने गुरु-संप्रदाय के अनुसार ही निजी उपासना करनी चाहिए । अंततोगत्वा सब कुछ परब्रह्म परमात्मा, स्वानंदनाथ, ब्रह्मणस्पति के ही कलांश-रूप हैं । अत: प्रस्तुत ग्रंथ-निर्माण का उद्देश्य किसी देवता का

अपमान करना, नीचा दिखाना अथवा किसी भी संप्रदाय या उपासना को कम-ज्यादा अथवा श्रेष्ठ-कनिष्ठ मानना कदापि नहीं है । प्रत्येक संप्रदाय तथा उपासना-आराधना अपनी-अपनी दृष्टि से श्रेष्ठ ही है और हर एक को चाहिए कि वह एकनिष्ठ - अनन्य - भाव से अपनी उपासना - आराधना अवश्य करे । तथापि उसे करते समय भगवान श्रीगणेश - स्मरण तथा गणेश-अर्चना करते हुए ही उसे निभाए । इससे निष्ठाभंग तो बिल्कुल नहीं होता; प्रत्युत शास्त्रविहित पद्धति से उपासना की जाने से संबंधित देवता संतुष्ट ही होते हैं । अस्तु ! जब श्रीगणेश-महिमा के संदर्भ में वेदों आदि ने भी नेति-नेति ही कहा है तो प्रस्तुत लघु-ग्रंथ में श्रीगणेश का संपूर्ण ऐश्वर्य एवं महत्त्व प्रकट होना संपूर्णतया असंभव है । फिर भी श्रीगुरुकृपा के फलस्वरूप अल्प-स्वल्प प्रयास किया है । श्रीसद्गुरु के चरणकमलों में यही प्रार्थना है कि इस ग्रंथ से गणेशभक्तों तथा सभी सांप्रदायिक श्रद्धालु साधकों को सुयोग्य लाभ अवश्य प्राप्त हो जाए । जो इससे अधिक विस्तृत एवं यथार्थ जानकारी प्राप्त करना चाहते हैं वे श्री योगींद्र मठ, गाणेशजगद्गुरुपीठ द्वारा प्रकाशित 'श्रीमद् गणेशविजय', 'श्रीमद् योगींद्रविजय' तथा 'श्रीमद् योगेश्वरी' इन ग्रंथों का अवश्य अवलोकन करें ।

।। जयजयगणराज समर्थ ।।

।। श्री गणराज समर्थ ।।

गणेशोपासना प्रधान ज्ञानप्रदायक गाणेश जगद्गुरुपीठ
श्री ब्रह्मभूयमहासिद्धि पीठ
अथवा
श्रीयोगींद्रमठ – (क्षेत्र मोरगाँव)

श्री योगींद्रमठ का कार्य :– नवधा भक्ति के समान यथाशास्त्र श्रीगणेशभक्ति करना । इसी प्रकार श्रीगणेशकृपा के इच्छुक भक्तों से चतुर्थी व्रतानुष्ठानपूर्वक गणेशभक्ति योगींद्रसंप्रदाय के अनुसार निग्रहपूर्वक करा लेना । श्रीगणेश उपासना विषयक उचित मार्गदर्शन करते हुए साधन, गणेशग्रंथ, पुराणांतर्गत स्तोत्र इत्यादि उपलब्ध करा देना ।

श्री मोरेश्वर क्षेत्र में पधारने वाले श्रीगणेश भक्तों का आद्य कर्तव्य :– सर्वप्रथम गाणेश गुरुपीठ के दर्शन करते हुए श्रीगणेश तीर्थस्नान तथा श्रीयोगींद्रमठ की अनुज्ञा से नित्ययात्रा-विधियुक्त श्री मोरेश्वर की सेवा करना । श्री नग्नभैरवराज प्रभु तथा श्री योगींद्र समाधि के दर्शन करते हुए मठानुशासन के अनुसार उपासना करना ।

श्रीयोगींद्रमठ की पूर्व–परंपरा :– इस गुरुपीठ को आदि कृतयुग से परंपरा प्राप्त है । कलियुग में इस पीठ के आदि आचार्य श्रीमद्गिरिजासुत योगींद्र महाराज जी ने आदि शंकराचार्य के उपदेशानुसार योगींद्र मठ की स्थापना की ।

श्रीमद् गणेश योगींद्राचार्य महाराज :- श्रीगणेश योगींद्राचार्य महाराज जी स्वयं साक्षात् श्री मोरया तथा मुद्‌गलमुनि के पूर्णावतार थे । २२८ वर्षों की सुदीर्घ आयु उन्हें प्राप्त हुई थी । उन्होंने संपूर्ण गणेश - मार्ग का प्रसार-प्रचार किया । पाखंडियों का पूर्ण खंडन करते हुए सर्वत्र विश्वविजय प्राप्त की । संप्रदाय के करोड़ों अनुयायियों का उन्होंने निर्माण किया । मोरेश्वर क्षेत्र का जीर्णोद्‌धार किया । उनका अधिकार इतना महान था कि उनकी प्रत्यक्ष सेवा करना संभव हो इसलिए भगवान विष्णु, भगवान शिवजी, सूर्यनारायण, ब्रह्माजी तथा गुणेश ये पंचदेवता स्वयं मानव-देह धारण करते हुए उनके शिष्य बने । मोरेश्वर क्षेत्र में निवास करते हुए उन्होंने मोरया की निरंतर सेवा की ।

श्री गणेश योगींद्रमहाराज जी का

अवतार ग्रहण काल -

श्रावण शुक्ला ५, शक १४९९ (सन १५७७ ईस्वी)

समाधि-काल -

माघ कृष्णा १०, शक १७२७ (सन १८०५ ईस्वी)

श्रीमद् गणेश योगींद्रमहाराज के अनंतर लगभग पचास-पचहत्तर वर्षों का कालखंड अज्ञात ही था । तत्पश्चात श्रीमद् अंकुशधारी महाराज ने श्री योगींद्र जी के आदेश से इस गुरुपीठ का पुनरुद्‌धार किया । श्रीगणेश के भक्तों के लिए भिन्न-भिन्न स्तोत्रादि की रचना करते हुए गाणेशग्रंथों को अनुष्ठानपूर्वक उपलब्ध कराते हुए उन्होंने भक्तों के लिए मार्ग प्रशस्त किया । श्री मोरया को प्रसन्न कराते हुए, आजीवन मठ में रहकर तपस्या की तथा साधक को किस तरह जीवन यापन करना चाहिए इसका आदर्श उदाहरण श्रद्‌धालुओं के सम्मुख प्रस्तुत किया ।

श्रीमद्अंकुशधारी महाराज का

अवतार ग्रहण काल -

मार्गशीर्ष शुक्ला ६, शक १८०१ (सन १८७९ ईस्वी)

समाधि-काल -

माघ शुक्ला १५, शक १८४१ (सन १९१९ ईस्वी)

इसके पश्चात श्री अंकुशधारी महाराज जी के शिष्य श्री गाणेश वरिष्ठगाणपत श्रीमद् हेरंबराज महाराज जी ने योगींद्र मठ का कार्य निरंतर जारी रखा । अपनी आयु के १५ वें वर्ष में ही गृहत्याग करते हुए उन्होंने अपने आपको निरंतर गुरुसेवा के लिए समर्पित किया । साधकों के समक्ष आदर्श गुरुसेवा का साक्षात आदर्श उन्होंने प्रस्तुत किया । कठोर तपस्या से भगवान श्रीगणेश को प्रसन्न कराते हुए उन्होंने मठ में रहकर पचास वर्षों तक 'अंकुश' मासिक पत्रिका को चलाया तथा श्रीगणेश भक्ति का प्रचार-प्रसार किया ।

श्री हेरंबराज महाराज का

अवतार ग्रहण काल -

श्रावण शुक्ला ७, शक १८१४ (सन १८९२ ईस्वी)

समाधि-काल -

पौष शुक्ला १, शक १८९६ (सन १९७४ ईस्वी)

श्रीयोगींद्र मठ के व्रतानुष्ठानों में से अत्यंत महत्त्वपूर्ण पर्व

श्रीमयूरेश जन्म - भाद्रपद शुक्ला १ से ४

श्रीयोगींद्र पुण्यतिथि उत्सव-माघ शुक्ला १५ से माघ कृष्णा १०

- श्रीगा. बालविनायक महाराज लालसरे

मोरगाँव (जि. पुणे)